विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

विचार संगम

भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978-81-993854-0-5

मूल्य - 400/-

रचना - विचार संगम-भारतीय दर्शन, विज्ञान, साहित्य-कला और तकनीकी के विशेष संदर्भ में

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

2

महात्मा गाँधी और स्वामी श्रद्धानन्द – दलित चिन्तन

अनिता मालिया
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति में समाज की समष्टि और व्यष्टि — दोनों रूपों में एक सुव्यवस्थित सामाजिक ढाँचा निर्धारित किया गया है। समष्टिगत व्यवस्था में वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है, जो प्रारम्भ में कर्म पर आधारित थी, परन्तु कालान्तर में जन्माधारित होती चली गई। व्यष्टिगत दृष्टि से आश्रम-व्यवस्था के माध्यम से मानव जीवन के परम-शुभ की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में 'दलित' शब्द का प्रचलन आरम्भ हुआ, जिसे कालान्तर में एक विशेष जातिगत वर्ग के रूप में सीमित कर देखा जाने लगा। महात्मा गाँधी ने अपने सामाजिक चिंतन में प्रायः अछूत, पीड़ित, अस्पृश्य, हरिजन आदि शब्दों का प्रयोग किया। वे अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक मानते थे। उनके शब्दों में — "अछूतपन धर्मसम्मत नहीं है और उसका धर्मसम्मत होना असंभव है।"

गांधीजी का यह दृष्टिकोण उस समाज-कल्याण भावना का परिचायक है, जिसका आरंभ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही कर दिया था। आर्यसमाज न तो छुआछूत को मान्यता देता है, न ही जन्म आधारित जाति-भेद को स्वीकार करता है। 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि दयानन्द ने इस तथ्य को अत्यंत स्पष्टता से प्रतिपादित किया है कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, आचरण और ज्ञान से निर्धारित होती है।

16 सितम्बर 1921 को मद्रास में आयोजित एक सभा में महात्मा गांधी ने हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता पर गहरी वेदना व्यक्त करते हुए कहा था कि हिन्दू धर्म में पंचम जाति जैसी कोई वस्तु अस्तित्व में ही नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि छुआछूत की भावना ईश्वर और मानवता — दोनों के प्रति अपराध है तथा यह हिन्दू धर्म के माथे पर लगा हुआ एक कलंक है। गांधीजी ने वहां उपस्थित अपने श्रमिक साथियों से आह्वान किया कि वे अपने हृदय से यह भ्रम निकाल दें कि पंचम भाई किसी से भी हीन या अछूत हैं।

गांधीजी का यह कथन उनके गहरे मानवीय दृष्टिकोण को प्रकट करता है। वे हिन्दू धर्म की वर्णव्यवस्था को उसके मूल कर्माधारित स्वरूप में स्वीकार करने के पक्ष में थे, किन्तु जन्माधारित भेदभाव और अस्पृश्यता को वे न केवल धर्मविरुद्ध, बल्कि मानवता के विरुद्ध एक जघन्य अपराध मानते थे। उन्होंने अपने लेख 'यंग इंडिया' में लिखा कि वे चार वर्णों की प्रणाली के समर्थन में तो सदैव तत्पर हैं, परंतु अस्पृश्यता जैसी अमानवीय प्रथा को वे ऊँचेपन के अहंकार का प्रतीक समझते हैं।

गांधीजी का मानना था कि हिन्दुत्व की किसी अन्य प्रथा ने मानव समाज के इतने बड़े वर्ग का दमन नहीं किया, जितना इस अस्पृश्यता ने किया है। उनके अनुसार, दलित वर्ग के लोग न केवल अन्य सभी की भाँति समान अधिकार के अधिकारी हैं, बल्कि वे राष्ट्र और समाज के लिए अनिवार्य सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। यदि हिन्दू धर्म को एक उच्च, प्रेरणादायी और सम्मानजनक धर्म के रूप में प्रतिष्ठा बनाए रखनी है, तो उसे इस पापमय प्रथा से शीघ्र ही मुक्त होना होगा।

गांधीजी ने यह भी स्पष्ट किया कि यदि किसी धर्मग्रंथ में ऐसे विधान मिलते हैं जो विवेक और अंत:करण की आवाज के विपरीत हैं, तो उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए। उनके शब्दों में — सच्चा विधान वही है जो निर्बलों की रक्षा करे और उन्हें ऊपर उठाए; परन्तु जो विधान विवेक को दबा देता है, वह दुर्बलों को और अधिक नीचे गिरा देता है।

गांधीजी का यह समूचा चिंतन दर्शाता है कि उनके लिए धर्म और मानवता अलग-अलग नहीं थे। उनके विचारों में अस्पृश्यता का उन्मूलन केवल सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि धार्मिक शुद्धि का भी प्रतीक था।

कई विद्वानों ने गांधीजी के दलित चिंतन को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है। 'चाँद' पत्रिका के अछूत विशेषांक में डॉ. वीरेन्द्र यादव ने लिखा कि स्वयं को अछूतोद्धारक कहने वाले गांधीजी भी अपने अंतिम समय तक दलितों के साथ भोजन करने का साहस नहीं जुटा सके। उन्होंने 1946 में गांधीजी द्वारा दिल्ली की भंगी कॉलोनी में दलितों के साथ भोजन करने से इंकार की घटना का उल्लेख करते हुए उन्हें दलित-विरोधी कहा।

इसी प्रकार विभूति नारायण राय ने अपने लेख '1857 का दलित पक्ष' में भी इसी घटना का हवाला देते हुए गांधीजी के व्यावहारिक आचरण पर प्रश्न उठाया।

उस समय का भारतीय समाज अनेक कुरीतियों और अंधविश्वासों से ग्रस्त था। अभिजन वर्ग दलितों, किसानों और निर्धनों के प्रति दमनकारी था। स्त्रियों की स्थिति भी अत्यंत दयनीय थी; कन्या-वध, शिशुहत्या जैसी अमानवीय प्रथाएँ समाज में व्यापक रूप से प्रचलित थीं। ऐसे अंधकारमय वातावरण में किसी भी प्रकार का

सामाजिक सुधार अत्यंत कठिन था।

महात्मा गांधी ने जातिगत अत्याचारों की तुलना ब्रिटिश शासन की क्रूरता से करते हुए कहा था — ''साम्राज्यवादी सरकार ने जैसे डायरशाही हम पर चलाई, वैसी ही डायरशाही हिंदू धर्म के नाम पर सवर्ण हिंदुओं ने भंगी जातियों पर चलाई है।''

गांधीजी का यह कथन उस समय की भारतीय सामाजिक व्यवस्था की वास्तविकता को उजागर करता है। जातिप्रथा ने समाज में शोषण और अन्याय का गहरा वातावरण बना दिया था। यह सत्तावादी, असमान और अलोकतांत्रिक व्यवस्था थी, जिसमें प्रत्येक जाति अपने से नीचे की जाति को तुच्छ समझती और ऊपर की जाति से हीन अनुभव करती थी। व्यक्ति का सामाजिक स्थान उसके जन्म से तय हो जाता था, उसकी योग्यता या कर्म से नहीं। यह व्यवस्था न केवल नैतिक दृष्टि से अमानवीय थी, बल्कि राष्ट्रीय एकता और देशप्रेम की भावना के लिए भी घातक सिद्ध हुई। इसने भारतीय समाज को विभाजित कर लोकतांत्रिक विचारों के विकास को अवरुद्ध किया।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज अनेक कुरीतियों और अंधविश्वासों से ग्रस्त था। जातिप्रथा और छुआछूत हिन्दू समाज की प्रमुख सामाजिक बुराइयाँ बन चुकी थीं। सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ अपने पृथक नियमों और मर्यादाओं में बँधी थीं। सवर्ण जातियाँ स्वयं को श्रेष्ठ मानती थीं, जबकि दलितों को अस्पृश्य समझा जाता था। उनकी स्थिति इतनी दयनीय थी कि वे सवर्णों के कुओं से पानी तक नहीं भर सकते थे।

भारतीय समाज का दूसरा सबसे बड़ा रोग जातिप्रथा थी, जिसके विरुद्ध अनेक सुधारकों ने आजीवन संघर्ष किया। इस व्यवस्था ने समाज को असंख्य इकाइयों में बाँट दिया, जिससे ऊँची और नीची जातियों के बीच गहरा भेदभाव और वैमनस्य फैल गया। सामाजिक एकता पूरी तरह बिखर गई। आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक अवसरों पर ऊँची जातियों का एकाधिकार हो गया, परिणामस्वरूप निम्न जातियों का बहुसंख्यक वर्ग दरिद्रता, अशिक्षा और पिछड़ेपन में डूब गया। इसका सीधा अर्थ था— सम्पूर्ण राष्ट्र का दुर्बल होना।

जातिव्यवस्था के कारण निम्न जातियों को गाँव और नगरों से अलग क्षेत्रों में बसाया जाता था। वे सवर्णों के कुओं और तालाबों से पानी नहीं ले सकते थे और मंदिरों में प्रवेश भी वर्जित था। सामाजिक उत्पीड़न की यह स्थिति इतनी अमानवीय थी कि कुछ जातियों को 'अछूत' घोषित कर दिया गया। कहा जाता था कि उन पर दृष्टिपात मात्र से व्यक्ति अपवित्र हो जाता है, और यदि कोई अछूत अनजाने में किसी ब्राह्मण के सम्मुख आ जाए, तो उसे कठोर दंड दिया जाता था।

जातिप्रथा की यह विभाजनकारी मानसिकता न केवल सामाजिक पतन का कारण बनी, बल्कि भारतीय समाज की नैतिक और मानवीय संवेदना को भी गहराई से आहत करती रही।

स्वामी दयानन्द सरस्वती महान धर्मशास्त्रवेत्ता और समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए आर्य समाज की स्थापना की और वेदों का प्रचार किया। उनका प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश (1877) हिन्दी में लिखा गया, क्योंकि वे मानते थे कि एक राष्ट्रीय भाषा के अभाव में समाज सुधार सफल नहीं हो सकते। उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द ने अस्पृश्यता और दलितोद्धार का कार्य आगे बढ़ाया। उन्होंने 1924 में 'हिन्दू संगठन' नामक पुस्तिका लिखी, जिसमें अस्पृश्यता समस्या पर गंभीर चिंतन किया गया। यह विषय आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उस समय था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जीवनभर हिन्दू समाज की कुरीतियों, विशेषकर जन्म आधारित जाति-व्यवस्था और छुआछूत, के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने स्त्रियों की दशा सुधारने हेतु अनाथालय और विधवाश्रम स्थापित करने की प्रेरणा दी। वे वेदों को भारतीय संस्कृति का आधार मानते थे और उन लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में लाने का प्रयास करते थे जिन्होंने किसी कारणवश ईसाई या मुसलमान धर्म अपनाया था। स्वामी दयानन्द ने अष्टादश पुराणों और अन्य ग्रंथों को पूर्ण प्रमाण नहीं माना, क्योंकि उनका मानना था कि इनके कारण हिन्दू समाज में अनेक कुरीतियाँ और अंधविश्वास उत्पन्न हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अछूतोद्धार और दलितोद्धार के कार्य में कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस ने अस्पृश्यता विरोधी कार्यक्रम चलाने हेतु एक समिति बनाई, जिसमें स्वामी श्रद्धानन्द के साथ सरोजिनी नायडू, इन्दुलाल याज्ञिक और गंगाराम देशपाण्डे शामिल थे। किन्तु धन और व्यवस्थाओं से असन्तुष्ट होकर उन्होंने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर एक वर्ष के लिए कारागार में रखा। शीघ्र ही उनका ध्यान आगरा और अवध (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के मथुरा, आगरा, ऐटा और मैनपुरी जिलों में रहने वाले मलकाने लोगों के शुद्धिकरण पर केन्द्रित हो गया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने लेखों और संगठनात्मक गतिविधियों के माध्यम से अछूतोद्धार और दलितोद्धार को सर्वाधिक गति दी। उनके प्रमुख लेखों में "बिरादरी में मिलाने का काम स्वयं हिन्दू बिरादरियों को करना चाहिए", 'एक नहीं अनेक संस्थाओं की आवश्यकता है', 'दलितोद्धार किस प्रकार हो?', 'दलितोद्धार के मार्ग

में रुकावटें' और 'रचनात्मक हिन्दू संगठन' शामिल हैं। दो–ढाई वर्षों तक वे हिन्दू महासभा के उप–सभापति रहे और विभिन्न उपसमितियों में अपनी सक्रिय भूमिका निभाते रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द मानते थे कि अस्पृश्यता का उन्मूलन भारतीय राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। 27 दिसम्बर 1919 को अमृतसर में अखिल भारतीय कांग्रेस के 34वें अधिवेशन में उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय शिक्षण और अस्पृश्यता–निवारण, ये दो महत्वपूर्ण साधन हैं। उन्होंने उपस्थित लोगों से अपील की कि वे अछूतों के प्रति ऐसा व्यवहार करें कि उनके बच्चे आपके बच्चों के साथ स्कूल और कॉलेज में पढ़ सकें, समाज में समान अवसर पा सकें और राजनीतिक–सामाजिक प्रगति में आपके साथ कदम से कदम मिलाकर चल सकें। उनका यह संदेश सामाजिक समरसता और समानता की दिशा में प्रेरक था।

अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन के बाद स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल का कार्य संभाला। जब कलकत्ते में विशेष अधिवेशन हुआ, तो वे केवल इसलिए उपस्थित हुए क्योंकि उन्होंने स्वागत समिति को एक प्रस्ताव भेजा था कि कांग्रेस के कार्यक्रमों में अछूतोद्धार शामिल किया जाए। दुर्भाग्यवश, उस प्रस्ताव पर विचार तक नहीं किया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी पुस्तिका हिन्दू संगठन में लिखा कि उन्होंने दिल्ली में दलितोद्धार सभा का आयोजन किया और महात्मा गांधी से आर्थिक सहायता के लिए संपकज़ किया, पर बाद में उन्हें पता चला कि कांग्रेस इस संबंध में कुछ नहीं कर सकती। 9 सितम्बर 1921 को उन्होंने महात्माजी को लिखा कि दिल्ली और आगरा के चमारों की केवल इतनी मांग थी कि उन्हें सार्वजनिक कुओं से पानी भरने दिया जाए और पानी पत्तों से न पिलाया जाए। उन्होंने यह भी लिखा कि स्थानीय मुस्लिमों की प्रतिक्रिया में बाधाएँ आ सकती हैं, क्योंकि वे चमारों को कुओं से बलपूर्वक हटा सकते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द ने स्पष्ट किया कि अब वे कांग्रेस से आर्थिक सहायता की उम्मीद नहीं रख सकते, लेकिन अपनी समिति के साधनों के अनुसार वे सभी आवश्यक कार्य करेंगे।

स्वामी श्रद्धानन्द ने सबसे पहले 'दलितोद्धार' शब्द का प्रयोग किया और इसके लिए फरवरी 1923 में एक लाख रुपये के कोष हेतु सार्वजनिक अभियान चलाया। अछूतोद्धार में उनका सक्रिय समर्थन क्षत्रिय उपकारिणी महासभा द्वारा 30 अगस्त 1922 को काशी में पारित प्रस्ताव से भी प्राप्त हुआ।

स्वामी श्रद्धानन्द का संन्यास–काल पूरी तरह दलितोद्धार और शुद्धि आन्दोलन

को समर्पित था। असहयोग आन्दोलन के बाद उनकी जीवनी लगभग दलितोद्धार की जीवनी बन गई। वे चाहते थे कि यह कार्य केवल हिन्दुओं द्वारा किया जाए और बायकोम–सत्याग्रह जैसे गैर–हिन्दुओं की भागीदारी उन्हें स्वीकार्य नहीं थी।

उन्होंने अर्जुन में लिखा कि महात्मा गांधी भले ही अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का बड़ा कलंक मानते थे, पर इसे मिटाना केवल हिन्दुओं का कर्तव्य है। गांधीजी की मदद केवल ऊँचे व्यक्तित्व की छाया से होनी चाहिए, लेकिन वास्तविक कार्य हिन्दू समाज को ही करना था। स्वामी श्रद्धानन्द का दृष्टिकोण अधिक उग्र और प्रत्यक्ष था; वे चाहते थे कि दलितों के साथ खानपान और अन्य व्यवहार पूर्ण रूप से खुला हो।

स्वामी श्रद्धानन्द कांग्रेस और हिन्दू महासभा दोनों से समान दूरी बनाए रखते थे। उन्हें काकीनाडा कांग्रेस में मौलाना मुहम्मद अली द्वारा 6 करोड़ अछूतों को हिन्दू और मुसलमानों में बाँटने के बयान की जानकारी हुई, जो हिन्दू नेताओं को क्षणभर के लिए स्तब्ध कर गया, लेकिन कोई ठोस कार्य नहीं हुआ। हिन्दू महासभा पर सनातनी पण्डितों का प्रभुत्व था; वे दलितों को यज्ञोपवीत देना, उनके साथ भोजन करना, वेद पढ़ाना या मंदिरों में प्रवेश देना स्वीकार नहीं कर सकते थे। शुद्धि के मामले में भी वे गैर हिन्दुओं को धर्म में लेने के लिए तैयार थे, लेकिन किसी जाति में शामिल करने में असमर्थ थे।

आर्यसमाज ने शुद्धि और दलितोद्धार कार्य आरम्भ किया, जिसमें सबसे बड़ी बाधा हिन्दू जाति में फैले जात–पांत और छुआछूत के कुसंस्कार थे। महर्षि दयानन्द ने जन्मगत जाति का खंडन करते हुए गुण–कर्मानुसार वर्ण–व्यवस्था की वकालत की। यदि जात–पांत और छुआछूत न होते, तो शुद्धि और दलितोद्धार की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आर्यसमाज ने स्पष्ट किया कि शुद्धि केवल धार्मिक चिह्न स्वीकारने का नाम नहीं, बल्कि जीवन की शुद्धि का नाम है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने रोमन कैथोलिक ईसाई मत के प्रचार का अध्ययन करते हुए लिखा कि भारत में उनके प्रचार के इतिहास में धोखाधड़ी और कठोर अत्याचार शामिल हैं, जिससे उनका सम्प्रदाय कलंकित होता है। यही अनुभव अछूतोद्धार के प्रति स्वामी श्रद्धानन्द के रुझान को और तीव्र करता गया। पंजाब में लाहौर, सियालकोट, मुल्तान और मुजफ्फरगढ़ में पहले–पहल अछूतोद्धार के प्रयासों का सामना भारी विरोध से हुआ, लेकिन बाद में राजनैतिक परिस्थितियों ने स्थिति बदल दी।

स्वामी श्रद्धानन्द चाहते थे कि कांग्रेस भी इस समस्या के समाधान में सक्रिय भूमिका निभाए। उन्होंने अमृतसर और कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशनों में इसके पक्ष में भाषण दिए। नागपुर और बारडोली के अधिवेशनों में अस्पृश्यता निवारण को शर्त के रूप में रखा गया। गांधीजी उनके इस दृष्टिकोण से सहमत थे और अछूतोद्धार को

कांग्रेस के कार्यक्रम में शामिल किया, पर गांधीजी के जेल जाने के बाद अन्य नेताओं ने इस मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया। इस पर स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस के महामंत्री विलभाई पटेल को 23 मई और 3 जून 1922 को पत्र लिखकर अपनी चिंता व्यक्त की।

स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि और दलितोद्धार के प्रयासों से कमजोर और क्षीण होती हिन्दू जाति में नए प्राण संचारित किए और उन्हें स्वावलम्बी बनाने का साहस दिया। उनका व्यक्तित्व निर्भीकता और स्पष्टवादिता का प्रतीक था। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में विद्यार्थियों को बिना भेदभाव प्रवेश दिया और शिक्षा के माध्यम से अस्पृश्यता निवारण के लिए उन्हें तैयार किया। स्वामी श्रद्धानन्द शुद्धि और दलित उत्थान के निर्भीक योद्धा सिद्ध हुए।

महात्मा गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द दोनों ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से दलित उत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस में पहली बार दलित उत्थान का प्रस्ताव रखा, लेकिन कांग्रेस की आंतरिक राजनीति के कारण इसे स्वीकार नहीं किया गया, जिससे वे कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। स्वतंत्र भारत में सामाजिक समरसता की आवश्यकता आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण है, और इसके लिए समाज के सभी वर्गों को रचनात्मक योगदान देना चाहिए।

निष्कर्षत: स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी दोनों ही दलित उत्थान और अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए सक्रिय थे। गांधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का बड़ा कलंक माना और दलितों के सामाजिक समानता के अधिकारों के पक्ष में कार्य किया, जबकि स्वामी श्रद्धानन्द ने इसे आर्यसमाज के सिद्धांतों के तहत धर्म-सुधार का मुद्दा मानते हुए संगठनात्मक, साहित्यिक और व्यावहारिक प्रयास किए। स्वामी श्रद्धानन्द ने दलितोद्धार शब्द का प्रयोग सबसे पहले किया और शुद्धि तथा दलितोद्धार के लिए अभियान चलाया, विद्यार्थियों और समाज में समानता का प्रशिक्षण दिया। उन्होंने कांग्रेस और हिन्दू महासभा दोनों में सहभागिता की, लेकिन आंतरिक राजनीति और रुढ़िवादी दृष्टिकोण से असंतुष्ट होकर कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट, निर्भीक और समाज-सुधारक था। आर्यसमाज के माध्यम से उन्होंने जातिप्रथा, छुआछूत और अन्य सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। आज भी सामाजिक समरसता, समानता और दलित उत्थान की आवश्यकता उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी उनके समय में थी।